International Journal of Creative Research Thoughts
Volume 1, Issue.9, Sept 2013
ISSN:-2320-2882

ORIGINAL ARTICLE

जन कवि नागार्जुन की कविताई

डॉ. रामकिंकर पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक हिन्दी
शासकीय लाहिड़ी महाविद्यालय, चिरमिरी जिला कोरिया (छ.ग.)
श्रीमती विनीता पाण्डेय
टी.जी.टी. (हिन्दी)
केन्द्रीय विद्यालय क्र. 1 रीवा (म.प्र.)

सार :–

नागार्जुन आधुनिक हिन्दी कविता की प्रगतिवादी धारा के महत्वपूर्ण कवि माने जाते हैं। नागार्जुन स्वतंत्र भारत के ऐसे रचनाकारों में परिगणित किये जाते हैं जिन्हें सच्चे जन कवि का दर्जा प्राप्त है। नागार्जुन की कविताएँ सीधे सामान्य जनता से जुड़ी हुई हैं। उनका काव्य यथार्थ की घोर अभिव्यक्ति का काव्य है। उनका सम्पूर्ण जीवन ही एक किंवदन्ती बन गया है। वे कबीर की परम्परा से जुड़े हुए रचनाकार हैं। वे सच को सच की तरह कबीराना अंदाज में डंके की चोट पर लिखने में विश्वास करते हैं। वे केवल दूसरो पर नहीं बल्कि खुद पर भी करारा व्यंग्य करने में कभी कोताही नहीं बरतते थे। अपना घर फूंककर तमाशा देखने का मजा और फाकामस्ती में भी फक्कड़ाना ठाट! कहने का मतलब यह कि अक्खड़ता, विद्रोह, जनसंघर्ष व जन आंदोलन की बुलंद निर्भीक आवाज का नाम है – नागार्जुन।

प्रस्तावना :–

नागार्जुन का रचना संसार अत्यंत विस्तृत है। पहले तो उनकी जीवन यात्रा ही बहुत लम्बी है और फिर उस पर उनका लेखन कार्य, कुल मिलाकर उन्होंने एक लम्बा दौर गुजारा है। वर्ष 1911 से 1998 तक यानी 87 वर्षों की जीवन यात्रा, फिर साठ वर्षों से अधिक की हिन्दी, संस्कृत, मैथिली, बांग्ला आदि में काव्य यात्रा सम्पन्न करने वाले वैद्यनाथ मिश्र उर्फ बाबा नागार्जुन के विराट काव्य संसार का आलोचन–विलोचन एक गंभीर अध्ययन की माँग करता है। यद्यपि कि कुछ समीक्षकों द्वारा उन्हें या तो मात्र यथार्थवादी या फिर वामपंथी–मार्क्सवादी कवि के रूप में मूल्यांकन किया जाता रहा है

Please cite this Article as : डॉ. रामकिंकर पाण्डेय,श्रीमती विनीता पाण्डेय, जन कवि नागार्जुन की कविताई: International Journal Of Creative Research Thoughts, Volume 1, Issue.9, September 2013

या फिर किसी खास मत, दल या विचारधारा से सम्बंध कवि सिद्ध किया जाता रहा है। लेकिन नागार्जुन एक ऐसे रचनाकार हैं जो किसी खाँचे में नहीं बँधते भले ही वे एक यथार्थवादी रचनाकार हैं लेकिन उनका यथार्थ बोध विविध – बहुरंगी है, उसके अन्तर्गत विचार, भाव, संवेदना, सौंदर्य, आदि सभी रंगो की सम्पूर्ण उपस्थिति है। सामान्य जनमानस से विभिन्न रूपों में उनका लगाव उन्हें एक सच्चे जन कवि की तरह प्रस्तुत करता है।

विवेचना :–

जो कवि जनता के जितने अधिक निकट होता है, उसके सुख–दुख का जितना अधिक भागीदार होता है, उसके संकट काल में उसका जितना सहायक होता है, उसे जितना अधिक मानसिक संबल और अवलंब प्रदान करता करता हुआ प्रतीत होता है, वही जन कवि कहलाने का सच्चा हकदार होता है। बाबा नागार्जुन ने बार–बार अपने को जनकवि कहा है – हृदय धर्मी जनकवि मैं, 'जनकवि हो तुम, तुम्हीं बताओं, मैं जनकवि हूँ , आदि तो इसीलिए वे जनता के बीच के कवि हैं। उनकी इसी चेतना को स्पष्ट करते हुए व्यासमणि त्रिपाठी लिखते हैं – ''उन्होंने अपने सुख–दुख को जनता में और जनता के सुख–दुख को अपने में, देखा, भोगा और महसूस किया है – स्वगत शोक के। बचपन से अभाव का आसन पीने वाले नागार्जुन 'आ रहा हूँ पीता अभाव का आसव ठेठ बचपन से' उस कष्ट और पीड़ा का मर्म जानते हैं जो अभाव जनित है। ज़ाहिर है – भोगा हुआ यथार्थ रचना को अधिक प्राणवान और प्रामाणिक बनाता है।''[1] यह बिल्कुल सच है कि किसी भी रचनाकार के जीवन का भोगा हुआ यथार्थ उसकी रचनाओं को अधिक जीवंत बना देता है और चूंकि नागार्जुन को दुख–दारिद्रय, दीनता–हीनता का जीवन स्वयं जीना पड़ा है, तुच्छता बोध का विषपान करना पड़ा है इसीलिए उन्होंने सामान्य जन की व्यथा कथा को बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करने में सफलता पायी है –

''तुच्छ से अति तुच्छ जन की जीवनी पर हम लिखा करते
कहानी, काव्य, रूपक, गीत
क्योंकि हमको स्वयं गीतो तुच्छता का भेद है मालूम।''[2]

नागार्जुन वैचारिक रूप से सुदृढ़ कवि थे। उनकी लेखन यात्रा जिस परिवेश और दौर से प्रारंभ होती है वह उल्लेखनीय है। प्रगतिवादी आंदोलन उस समय जोर मार रहा था और वे उससे प्रभावित होते रहे किन्तु इस क्रम में भी उनकी दृष्टि खुली रही। श्री भगवान सिंह लिखते हैं – ''वैसे देखा जाए तो नागार्जुन का मिज़ाज़ बहुत कुछ राहुल सांकृत्यायन जैसा था। राहुल जी के साथ रहते हुए उनकी तरह वे भी चीरवधारी बौद्ध भिक्षु, मार्क्सवादी, दलीय साम्यवादी के रूप में कायांतरित होते रहे, किन्तु उनका कवि मन सदैव अपने देश समाज की विविध वास्तविकताओं से जुड़े रहकर उनकी काव्य चेतना को संवारता–निखारता रहा है जिसके प्रमाण हैं उनकी 'युग–धारा', 'सतरंगे पंखोवाली', 'हजार–हजार बांहोवाली', 'खिचड़ी विप्लव देखा हमनें' जैसे कविता संग्रह की कविताएं।''[3]

वास्तव में जनवादी कवि अपने समय तथा समाज का यथार्थ चित्रण करता है। वह साहित्य को अपना 'सोद्देश्य कर्म' मानता है। वह यथार्थ से टकराते हुए अपने आस–पास घटित होने वाली सभी घटनाओं–प्रघटनाओं पर पैनी नजर रखता है और उसे अपने साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करने की कोशिश करता है। एक सच्चा जन कवि जन–साधारण की दुख दर्द भरी जिन्दगी को देखकर आहत और द्रवित होता है। जनकवि नागार्जुन की 'प्रत्यावर्त्तन' कविता की ये पंक्तियाँ उनके इसी सरोकार को बयान करती है–

''कल्पना के पंख सुंदर तोड़ डाले।
भूमि पर चलने लगा तो पड़े छाले।''[4]

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता में हाशिए पर खड़े व्यक्ति की दशा–दुर्दशा और उसके अभ्युत्थान हेतु बहुत कुछ लिखा गया है लेकिन नागार्जुन ने हाशिए पर धकेले गए लोगों को जिस तरह से चित्रित किया है, जो यथार्थ अंकन किया है, उनकी चेतना को जागृत करने का जो प्रयत्न किया है – वह बेमिसाल होने के साथ–साथ ही अत्यन्त दुर्लभ भी है। खेत–खलिहान से लेकर नगरों–महानगरों तक में लगे हुए श्रमिक वर्ग की दशा दुर्दशा का यथार्थ चित्रण उनकी कविताओं में मिल जाता है। अपनी एक कविता में वे सफेद लिबास पहने, चौरंगी की हवा खाने निकले उस संभ्रान्त व्यक्ति की

मनोदशा का व्यंग्यात्मक चित्रण करते हैं जो श्रमिकों की स्थिति पर नाक भौं सिकोड़ता है –

''घिन तो नहीं आती है?
कुली मजदूर हैं
बोझा ढोते हैं, खींचते है ठेला
धूल–धुआँ–भाप से पड़ता है साबका
थके माँदे, जहां–तहां हो जाते हैं ढेर
सपने में भी सुनते हैं धरती की धड़कन
आकर ट्राम के अंदर पिछले डिब्बे में
बैठ गए इधर–उधर तुमसे सटकर
आपस की उनकी बतकही
सच–सच बतलाओ
नागवार तो नहीं लगती है?
जी तो नहीं कुढ़ता है?
घिन तो नहीं आती है?[5]

कवि नागार्जुन अपनी विचार धारा से पूर्णतः जनकवि हैं। उनके यथार्थ बोध को समझने के लिए उनकी 'प्रतिबद्ध हूँ' कविता उल्लेखनीय है जो कि वर्ष 1975 में लिखी गयी थी। यह कविता उनकी जनपक्षधरता को प्रदर्शित करती है। यह कविता एक तरह से नागार्जुन के काव्य के व्यापक फलक को समझने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

''प्रतिबद्ध हूँ, सम्बद्ध हूँ, आबद्ध हूँ,
प्रतिबद्ध हूँ जी हां प्रतिबद्ध हूँ
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त
संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ
सम्बद्ध हूँ, जी हां सम्बद्ध हूँ
सचर–अचर सृष्टि से

शीत से, ताप से, धूप से, ओस से, हिमपात से
राग से, द्वेष से, क्रोध से, घृणा से, हर्ष से, शोक से, उमंग से, आक्रोश से
आबद्ध हूँ जी हां आबद्ध हूँ –
अविवेकी भीड़ की 'भेड़िया धसान' के खिलाफ
अन्ध बधिर 'व्यक्तियों' को सही राह बतलाने के लिए
अपने आपको भी व्यामोह से बारम्बार उबारने की खातिर
प्रतिबद्ध हूँ, जी हां शतधा प्रतिबद्ध हूँ।''[6]

इस कविता में कवि नागार्जुन ने अपने लिए 'प्रतिबद्ध' 'सम्बद्ध' और 'आबद्ध' तीनों विशेषणों का प्रयोग किया है जिससे वे सामान्य मनुष्य की प्रगति के निमित्त अपनी प्रतिबद्धता घोषित करते हैं।

वास्तव में कवि अपने समय तथा समाज की विसंगतियों, विकृतियों और विडंबनाओं का वास्तविक चित्रण करता है। जनकवि नागार्जुन ने भी समकालीन सामाजिक–आर्थिक, विसंगतियों, विद्रूपताओं और असमानताओं का यथार्थ चित्रण किया है। समाज में बढ़ती बेरोजगारी, भूखमरी, अकाल, गरीबी, दरिद्रता तथा अभाव भी जिंदगी का यथार्थ नागार्जुन की कविता में दिखाई देता है।''[7] उनकी ''खाली है हाथ, खाली है पेट, खाली है थाली, खाली है प्लेट।''[8] जैसी पंक्तियाँ अभावग्रस्त ज़िंदगी की सच्चाई बयान करती हैं तो उनकी 'अकाल और उसके बाद' शीर्षक कविता अकाल की दारूणता और भयावहता का अत्यंत यथार्थ और मार्मिक चित्रण करती है। उनकी ये कविताएं समाज की उस वास्तविकता को उजागर करती हैं जहां भूख, भय, पीड़ा और संत्रास है।

नागार्जुन की कविता में 'भूख' के अनागिनत चित्रण हैं। इस जन कवि की संवेदना भूखे–नंगों के प्रति है इसीलिए उसमें व्यवस्था के प्रति रोष है 'भारतेन्दु' कविता में आजादी को लेकर उसका क्रोध बेहद तल्ख है और वह पूछ बैठता है – ''मूर्च्छित हैं हल बैल और भूखी धरती है, इस आजादी का क्या करें बिना भूमि के खेतिहर।''

आजादी के बाद की हिन्दी–कविता मोहभंग और अस्वीकार की कविता है। कवि नागार्जुन भी आजादी से मोहभंग का शिकार है उनकी कविताएं इसका प्रमाण हैं।

गरीबी तथा दुख के निरंतर बढ़ने, अत्याचार और अमानवीयता की चक्की में सामान्यजन के सदैव पिसने को उन्होंने नीतियों की विफलता, कुशासन और कुव्यवस्था का परिणाम माना था – 'चमत्कार' कविता में उन्होंने लिखा – 'पेट – पेट में आग लगी है, घर–घर में फाका।' कविता में कंकाल बने मनुष्यों की हड्डियाँ गिनाते समय भी उनका आक्रोश कुव्यवस्था पर ही है –

'मास्टर की छाती में कैठो हाड़ है,
गिन लो जी, गिन लो, गिन लो जी गिन लो।
मजदूर की छाती में कैठो हाड़ है,
गिन लो जी, गिन लो, गिन लो जी गिन लो।''

कुल मिलाकर उनकी कविताओं का स्वर उस सर्वहारा के साथ जाकर मिलता है जो शोषित, पीड़ित है। नागार्जुन की सम्पूर्ण काव्य यात्रा में इन भाव बोधों पर लिखी गयी कविताओं की संख्या सर्वाधिक है।

उनकी एक कविता 'जयति–जयति जय सर्व मंगला' भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय कविता है जहाँ उन्होंने भोजन के लिए संघर्ष का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है –

''फटी–दरी पर बैठा है चिर – रोगी बेटा
राशन के चावल से कंकड़ बीन रही पत्नी बेचारी
गर्भ मार से शिथिल हैं अंग–अंग
मुह पर उसके मटमैली आभा
सब कुछ है कोयला नहीं है
कैसे काम चलेगा बोलो
चावल नहीं सिझा सकती है
रोटी नहीं सेक सकती है
भाजी नहीं पका सकती है''[9]

नागार्जुन की कविता कई बार स्वांतन्त्र्योत्तर भारत की राजनीतिक सामाजिक रिपोर्टिंग जैसी लगती है। ''प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है कि वे समसामयिक 'तथ्य को

काव्य' में रूपांतरित करते हैं। 'समसामयिकता' अपने आप में कोई काव्य दोष नहीं है, पर समसामयिक को 'कालजयी' और 'शाश्वत' सौंदर्यात्मक मूल्य में तब्दील होने के लिए देशकाल की संकीर्णता से ऊपर उठना होता है। इतिहास के तथ्य को साहित्य की बारीक चलनी से गुजरना होता है। जबकि नागार्जुन की कविताएँ इतिहास और काव्य के मूलभूत तात्विक अंतर को नज़र अंदाज़ कर प्रत्यक्षतः राजनीतिक घटनाओं, व्यक्तियों तथा विचार धारा की स्पष्ट घोषणा करती हैं।''[10] यहाँ हम देख सकते हैं कि नागार्जुन किस तरह से उस विचार धारा और विचार को अपनी कविताओं में स्पष्ट करते हैं जो शोषित पीड़ित जनसमुदाय की व्यथा, बेबसी, विह्वलता, भूख गरीबी और तंगदस्ती का समर्थन करती है। उनकी कविताएँ उस वर्ग का चित्रण करती हैं जो भूखे, नंगे, फटे–पुराने चिथड़ों में अपने शरीर को ढककर दारूण जीवन जीने को विवश हैं। शासक वर्ग द्वारा आयोजित जयन्ती को वे आजादी की जयन्ती नहीं बल्कि महँगाई की जयन्ती मानते हैं। वे आजादी की जयन्ती मनाए जाने के कतई पक्षद्यर नहीं हैं, इसे वे शुभ नहीं बल्कि दुखदायक स्थिति मानते हैं। 'घर से बाहर निकलेगी कैसे लाजवन्ती' कविता में इस दृश्य को हम देख सकते हैं।

''फटे वस्त्र हैं घर से बाहर निकलेगी कैसे लाजवन्ती
शर्म न आती, मना रहे वे महँगाई की रजत जयन्ती
काम नहीं है, दाम नहीं है
चैन नहीं, आराम नहीं है
धुआँ भरा है दिल दिमाग में.....।।''[11]

हिन्दी साहित्य में नागार्जुन का काव्य व्यक्तित्व विरल है वे किसी वाद से प्रतिबद्ध नहीं रहे समय समय पर उनकी कविता विभिन्न पड़ावों से गुजरती रही। उनकी काव्य यात्रा के बीच प्रयोगवाद, नई कविता, नकेनवाद, अकविता आदि–आदि काव्यांदोलन आए और चले गये। लेकिन नागार्जुन ने स्वयं को किसी से बाँधकर नहीं रखा। वे मार्क्सवाद से प्रभावित थे और प्रगतिवादी कवि कहे जाते हैं। लेकिन अन्य प्रगतिवादियों की तुलना में नागार्जुन की प्रकृति भिन्न है। वास्तव में वे हर काल खंड

में सच्चे जनवादी कवि रहे। उनका वाद प्रताड़ित, उत्पीड़ित, गरीब–गुरबों, शोषित दलित वर्ग की हमेशा वकालत करता रहा।

''उनकी नज़र हमेशा अपने सम–दुखियों के त्रासद जीवन पर पड़ी है। उस जीवन को यानि स्व जीवन को उन्होंने अक्षरबद्ध किया है। इसलिए नागार्जुन की कविता अल्पायु काव्यान्दोलनों को उस पार छोड़कर मुसीबत के मारे जन समुदाय के इस पार आयी है। प्रगतिवाद की प्रगतिशीलता नागार्जुन को प्रिय थी। लेकिन वह प्रगतिशीलता कृत्रिम अनुभव शून्य नारेबाजी नहीं रही।''[12]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि नागार्जुन की कविता सामान्य जन की कविता है। उनकी कविता में शोषण के प्रति विद्रोह का स्वर है। नागार्जुन वास्तव में ऐसे कवि हैं जो यथार्थपरक जीवन दृष्टि के साथ–साथ यथार्थपरक शैली भी अपनाते हैं। इसीलिए उनकी भाषा में बोलियों में ठेठ शब्दों से लेकर संस्कृत की संस्कारी पदावली तक के इतने स्तर हैं कि एक सामान्य पाठक से लेकर गंभीर आलोचक तक उनकी कविताओं को लेकर मुग्ध हो जाते हैं। नामवर सिंह ने सही लिखा है – ''तुलसीदास और निराला के बाद कविता में हिन्दी भाषा की विविधता और समृद्धि का ऐसा सर्जनात्मक संयोग नागार्जुन में ही दिखाई पड़ता है। यह बिल्कुल सच है कि नागार्जुन न केवल भाषा की विविधता बल्कि भाव–कथ्य और जीवन जगत में चित्रण की विविधता की दृष्टि से भी हिन्दी काव्य में तुलसी एवं निराला के बाद तीसरे स्थान के अधिकारी सिद्ध होते हैं।''

उपसंहार :

जन तथा धरती की महिमा का गान करते समय नागार्जुन के सामने सिर्फ 'मनुष्य' होता है। मनुष्यता का संरक्षण और विकास ही उनकी कविता का लक्ष्य है। यह इस कारण क्योंकि वे पहले मानव हैं उसके बाद रचनाकार। उन्हीं के शब्दों में – 'कवि हूँ पीछे, पहले तो मैं मानव ही हूँ।' निर्धन, निर्बल, निरीह, निरालंब, निराश्रित जन समुदाय के प्रति प्राणपण से प्रतिबद्ध – पक्षधर नागार्जुन की संवेदना–दृष्टि से सामान्य जनों की कोई भी स्थिति ओझल नहीं हो सकी है। परिणामतः वह प्रगतिवादी कविता में विश्व स्तर के कवि बन सके हैं।

संदर्भ सूची

1. आजकल, जून – 2011, पृ. 32
2. नागार्जुन रचनावली, खण्ड–1, पृ. 81
3. नया ज्ञानोदय, मई–2010, पृ. 82
4. नागार्जुन रचनावली खंड–1, पृ. 93
5. वही खंड–2, पृ. 118
6. वही खंड–2, पृ. 130
7. आलोचना अंक 43, (अक्टूबर–दिसम्बर 2011) पृ0 157
8. वही पृ. 119
9. वही पृ. 133
10. आजकल, जून–2011, पृ. 35
11. नागार्जुन रचनावली खंड–2, पृ. 48
12. आलोचना – 43, अक्टूबर–दिसम्बर 2011, पृ. 145